विवेकानंद कॉलेज

कोल्हापूर

NAAC Reaccredited 'A'
with CGPA -3.24 (in 3rd cycle)

'ज्ञान, विज्ञान आणि सुसंस्कार यांसाठी शिक्षणप्रसार'

-शिक्षणमहर्षी डॉ. बापूजी साळुंखे

ISSN : 2281-8848

VIVEK
RESEARCH JOURNAL

A Biannual Peer Reviewed National Journal of Multi-Disciplinary Research Articles

A Special Issue on

साहित्य में अदिवासी और पर्यावरण विमर्श

March, 2023

विशेष अंक

मार्च, 2023

साहित्य में अदिवासी और पर्यावरण विमर्श

अतिथि संपादक

डॉ. आरिफ महात

संपादक मंडल सदस्य

डॉ. दीपक तुपे

डॉ. प्रदीप पाटील

डॉ. स्वप्निल बुचडे

अनुक्रम

Sr. No.	Title of Article	Author Name	Page No.
1	हिंदी आदिवासी साहित्य का स्वरूप, चुनौतियां और संभावनाएं	डॉ. अशोक मोहन मरळे	1-3
2	आदिवासी कविता में व्यक्त प्रकृति चिंतन	डॉ. आरिफ शौकत महात	4-7
3	संजीव की कहानी 'अपराध': अपराध के सांचों में कैद बेगुनाही की दास्तां	डॉ. दिपक जाधव 'अक्षर'	8-13
4	संजीव के कथा साहित्य में आदिवासी चेतना	डॉ. माधव राजप्पा मुंडकर	14-16
5	आदिवासी अधिकार हनन की दूब: पाँव तले की दूब	डॉ. दीपक रामा तुपे	17-19
6	आदिवासियों की दमित दासताँ : 'आदिवासी नहीं नाचेंगे'	डॉ.प्रवीणकुमार न. चौगुले	20-24
7	हिंदी में अनुदित कविताओं में अभिव्यक्त आदिवासी जीवन	डॉ. विनायक बापू कुरणे	25-28
8	आदिवासी नारी के जीवन को तबाह करती अंधविश्वास की 'डायन'	डॉ. सरिता बाबासाहेब बिडकर	29-31
9	डॉ. अनूप वशिष्ठ के गजलों में पर्यावरण विमर्श	डॉ. अलका निकम-वागदरे	32-35
10	हिंदी साहित्य में पर्यावरण विमर्श	1. प्रा. डॉ. नाजिम इसाक शेख 2. अश्विनी जगदीप थोरात	36-39
11	''मरंग गोडा नीलकंठ हुआ'' उपन्यास में विस्थापन तथा प्रदुषण विमर्श	प्रोफेसर डॉ. साताप्पा शामराव सावंत	40-42
12	"हिंदी के स्वातंत्र्योत्तर पहाडी आंचलिक उपन्यासों में चित्रित उत्सव पर्व त्यौहार"	प्रा. डॉ. मनीषा बाळासाहेब जाधव	43-48
13	समकालीन कविता में पर्यावरण प्रदूषण	डॉ. आर. पी. भोसले	49-51
14	हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श	प्रा. डॉ. एम. ए. येल्लुरे	52-53
15	जनजाति समाज और पर्यावरण के संबंध का भौगोलिक अध्ययन	डॉ. संदीप रुपरावजी मसराम	54-57
16	"सुमित्रानंदन पंत का काव्य पर्यावरण चेतना के परिप्रेक्ष्य में"	डॉ. कृष्णात आनंदराव पाटील	58-59
17	हिंदी साहित्य में पर्यावरण विमर्श	डॉ. संतोष बबनराव माने	60-62
18	आदिवासी संवेदनाओं की दास्तां: 'जंगल जहा शुरू होता है'	डॉ. संतोष तुकाराम बंडगर	63-66
19	अल्मा कबूतरी (उपन्यास) : कबूतरा आदिवासी जाति की यथार्थ दासता	श्री. नीलेश वसंतराव जाधव	67-68
20	आदिवासी समाज की समस्याएं 'काला पादरी' उपन्यास के संदर्भ में	डॉ. रीना निलेश खिचडे	69-72

हिंदी साहित्य में पर्यावरण विमर्श

1. प्रा. डॉ. नाजिम इसाक शेख
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
श्री. विजयसिंह यादव महाविद्यालय,
पेठ वडगाव जिल्हा कोल्हापुर
मोबाईल: 9209106575
2. अश्विनी जगदिप थोरात
शोध-छात्रा
शिवाजी विश्वविद्यालय कोल्हापुर
मेल :
ashwinithoratias@gmail.com

शोध-सार :

पर्यावरण विमर्श आज हमारे लिए अति आवश्यक विषय बन चुका है। आज हम पर्यावरण के प्रश्नों से भाग नहीं सकते। हमारे उपभोग की प्रवृत्ति इतनी बढ़ गई है कि इसका सारा प्रभाव प्रकृति पर पड़ रहा है। अपने उपभोग के लिए हम प्राकृतिक संसाधनों का धडल्ले से प्रयोग कर रहे हैं। जल, जंगल, वायु, जमीन, आकाश जैसे प्रकृति प्रदत्त चीजों का हमने इतना दुरूपयोग किया है कि ये सारे आज संकट में आ गए हैं। इस आलेख में समकालीन कहानिकारों की कहानियों में व्यक्त पर्यावरणीय चिंता एवं चेतना की पड़ताल की गई है।

बीज शब्द : पर्यावरण विमर्श, बहुराष्ट्रीय कम्पनी, विस्थापन।

मूल आलेख :

प्रकृति का संकट में आना हमारे अस्तित्व के लिए खतरनाक है। हमने गहरी नींद से जगने में बहुत देर कर दी है। हमने अपने कर्मों से बहुत कुछ बर्बाद कर लिया है और अब जो बचा है, उसके प्रति हम अगर सचेत न हुए तो भावी पीढ़ी के भविष्य को हम अंधकार में ढ़केल के ही दम लेंगे। यही कारण है कि आज पूरे विश्व में पर्यावरण से जुड़े मुद्दों पर विमर्श की आवश्यकता महसूस की जा रही है। 'डायलेक्टिक्स ऑव नेचर' पुस्तक में प्रकृति से छेड़खानी के दुष्परिणाम बताते हुए फ्रेडरिक एंगेल्स कहते हैं – प्रकृति पर मनुष्य की विजय को लेकर ज्यादा खुश होने की जरूरत नहीं, क्योंकि ऐसी हर जीत हमसे अपना बदला लेती है। पहली बार तो हमें वही परिणाम मिलता है जो हमने चाहा था, लेकिन दूसरी और तीसरी दफा इसके अप्रत्याशित प्रभाव दिखाई पड़ते हैं जो पहली बार के प्रत्याशित प्रभाव का प्रायः निषेध कर देते हैं।

भारतीय संस्कृति में वन और वनस्पति का बहुत अधिक महत्व रहा है। ऋषि मुनियों का आश्रम वनों में ही होता था। मानव, वन्य जीव, प्रकृति के बीच पारस्परिक सम्बंध हुआ करता था। वेदों, उपनिषदों आदि ग्रन्थों में मनुष्य के स्वस्थ जीवन के लिए पर्यावरण को महत्व दिया गया है। हमारी संस्कृति में प्रकृति हमेशा से पूजनीय रही है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने निबंध 'कुटज' में लिखा है –"यह धरती मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हूँ। इसीलिए मैं सदैव इसका सम्मान करता हूँ और मेरी धरती माता के प्रति नतमस्तक हूँ।" (द्विवेदी 32) अग्नि, नदी, वृक्ष, सूर्य, पशु-पक्षी सारे पूजनीय रहे हैं। यूरोप की तुलना में भारतीय संस्कृति हमेशा प्रकृति से सामंजस्य बैठाती आई है, किन्तु यूरोप की औद्योगिक क्रांति, पूँजीवादी विकास, वैज्ञानिक उन्नति, विश्व युद्ध, शीत युद्ध, ओजोन क्षरण, परमाणु परीक्षण, वैश्वीकरण आदि ने प्रकृति के साथ हमारे रिश्तों को नष्ट कर दिया है। मानव जाति की एकपक्षीय विकास ने प्रकृति को बहुत नुकसान पहुँचाया है। आज हमारे चारों तरफ महामारी फैली हुई है, न साँस लेने के लिए शुद्ध वायु, न पीने के लिए शुद्ध जल मिल पा रहा है, ओजोन होल लगातार फैल रहा है, ग्लेशियर पिघल रहा है, पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है, खाद्य वस्तुएँ विषाणु युक्त हो गई हैं, हमारे लिए पर्यावरण को बचाने की बड़ी जिम्मेदारी आ पड़ी है। यही पर्यावरण विमर्श की आधारभूमि है।

नदियों पर बड़े-बड़े बाँधों के निर्माण ने नदियों की गति रोक दी है, जहाँ विकास के लिए बड़े-बड़े बाँधों का निर्माण आवश्यक है, वहीं इसके कई दुष्परिणाम देखे जा सकते हैं। जिस देश में नदी को ईश्वर मान कर पूजा जाता है, उसी देश में नदी की ऐसी दुर्गति हो रही है। कारखानों से लेकर घरों तक की सारी वर्जित चीजें नदी में ही फेंकी जाती है। बड़े- बड़े शहरों के कचरों से भरे नाले के मुहाने नदी पर ही जाकर खुलते हैं। एस. हारनोट की कहानी 'एक नदी तड़पती है' में विकास के नाम पर बाँधों के निर्माण एवं उससे लोगों के विस्थापन के साथ ही साथ एक नदी के तड़प कर मरने की व्यथा दिखाई गई है। किस प्रकार कम्पनी के बड़े बाबुओं और

नेताओं ने आधुनिक यंत्रों के साथ नदी पर बेरहम आक्रमण शुरू कर दिया और नदी तड़प- तड़प कर मरने लगी। कहानी में लेखक लिखते हैं- नदी धीरे- धीरे कई मीलो तक घाटियों में जैसे स्थिर व जड़ हो गई थी। उसका स्वरुप किसी भयंकर कोबरे जैसा दिखाई देता था मानो किसी ने उसकी हत्या करके मीलों लम्बी घाटी में फेंक दिया हो। अब न पहले जैसा बहते पानी का नदी- शोर था न ही कोई हलचल। (हारनोट 69)

कहानी में सतलज नदी पर बाँध बनाने के लिए लोगों की जमीनें जबरदस्ती खरीदी जा रही थी। गाँव के गाँव विस्थापित कर दिया गया था। सुमन को अब नदी की मीठी आवाज सुनाई नहीं देती। वह देखता है कि नदी किस प्रकार घुट- घुट कर मर रही है। बाँध के वजह से नदी के स्थान पर बहुत बड़ी झील बन गई है। वहाँ कई गाँव समा चुके थे। कहानी में लेखक दिखाते हैं- नदी का सौदा हो गया था। उसका पानी बूँद- बूँद बिक गया था। उसके बहाव, उसकी निरन्तरता और उसके निर्मल जल से सनी लहरों पर कम्पनी का कब्जा हो गया था। न जाने कितनी पीढ़ियों से अपनी- अपनी जमीन पर रचे – बसे लोग, उनके घर- आँगन, बाहर – भीतर स्थापित देवताओं की छोटी-छोटी देहरियाँ, गौशालाएँ, उनकी कच्ची भीतों में सारी पशुओं की रम्भाहटें देखते ही देखते वहाँ दफन हो गई थी (हारनोट 76)

नदियों पर बाँध बनने से जिस प्रकार नदियों का अस्तित्व संकट में आ गया है, पर्यावरण पर इसका गहरा प्रभाव पड़ रहा है। प्रदीप जिलवाने की कहानी 'भ्रम के बाहर' में भी लेखक ने जलपरी के माध्यम से पर्यावरणीय संकट एवं नदियों के विनाश की पीड़ा को व्यक्त किया है। जिस नदी में साल भर पानी रहता था, बाँध की वजह से अब वह बरसाती नदी बन चुकी है। नदियों पर कारखानों के रासायनिक गंदगी मिलने से नदी दुषित हो गई है। कहानी में जलपरी अपनी व्यथा सुनाते हुए कहती है- कल घूमते – घूमते नदी से आगे तक निकल गई थी, तो वहाँ पानी इतना विषैला था कि मेरी सांसे लगभग बंद हो गई थी। मैं तत्काल पलट कर भाग आई। थोड़ी दूर वापस आई तो कुछ मछलियों ने बताया कि उधर आगे जाकर बहुत सी फैक्टरियो का विषैला रसायन और अपशिष्ट नदी में सीधे जाकर मिलता है, जिससे उस तरह की सारी मछलियाँ पानी में हर साल मर जाती है। (जिलवाने 236)

विकास की अंधी दौड में इंसान पूरी धरती को अपने तरीके से बनाने, बिगाड़ने या संवारने में लगा हुआ है। इंसान यह भूल चुका है इस धरती पर वह अकेला नहीं है। सृष्टि पर जितना अधिकार इंसानों का है उतना ही अन्य जीवों का भी। इस बात को समझाते हुए कहानी में जलपरी कहती है- विवेक! मनुष्य को यह समझने की सख्त आवश्यकता है कि यह दुनिया सिर्फ उसी के लिए या उसी के होने या न होने से नहीं है। यह धरती चींटी और चिड़िया की भी उतनी ही है, जितनी मनुष्य की है। यह धरती बाघ, चीते, हिरण, हाथी, खरगोश की भी है। पेड़ों की भी है, पेड़ पर रहने वाली कीड़ों की भी है। (जिलवाने 236)

आज शहर की नदियाँ नालों में परिवर्तित हो चुकी है। नदी के मरने, उसके तड़पने की आवाज इंसान सुन नहीं रहा है। कहानी में विवेक अपने बचपन की नदी तलाश करता है, जलपरी की तलाश करता है, किन्तु उसे कोई नहीं मिलता। वह सोचता है शायद नदी के मरते ही जलपरी भी मर गई होगी। नदी की ऐसी दशा मनुष्य के द्वारा फैलाए गए प्रदूषण की वजह से है।

जल, जंगल और जमीन पर जबसे कम्पनियों का अधिकार हुआ है, जल, जंगल और जमीन पर आधारित करोड़ों लोगों को अपना व्यवसाय, अपने स्थान छोड़कर विस्थापित होना पड़ रहा है। जल, जंगल और जमीन पर कम्पनीवालों के अधिकार होते ही पर्यावरण के विनाश की प्रक्रिया शुरु हो जाती है। जयश्री राय की कहानी 'खारा पानी' गोवा के समुद्री जीवन पर आधारित उन मछुआरों की कहानी है जिसके समुद्र पर अब कम्पनी वालों का अधिकार हो गया है। समुद्री मछली पर जीवन यापन करने वाले मछुआरों को विस्थापित होना पड़ रहा है। साथ ही बड़े- बड़े जहाजों के कचरे और उससे रीतते तेल की वजह से समुद्र का जल दुषित हो रहा है। समुद्री इको सिस्टम नष्ट हो रहा है। लेखिका यह दिखाती है कि समुद्र किनारे पाँच सितारा होटल बन रहा है। कंक्रीट के जंगल उभर रहे हैं, इसके लिए तटों पर बसे सैकड़ों वर्ष पुराने गाँवों को उजाड़ा जा रहा है। उन लोगों से उनकी सभ्यता, संस्कृति, आजीविका सभी छीना जा रहा है। सैलानियों के द्वारा फैलाये गए प्रदूषण से समुद्री जीव मर रहे हैं। कहानी में रामा कहता है- कुदरत ने हमें जो दिया था, हम उसी में संतुष्ट थे। सर पर आकाश था, नीचे धरती का बिछौना..... अपने जल, जंगल, जमीन से हमें सब कुछ मिल जाता था, दो वक्त की रोटी, नींद और सुकून.... मगर अब तो सब छीन गया। न गरीबों के सर पर आकाश रहा, न पाँव के नीचे जमीन...... आजादी, उन्नति, आधुनिकता के नाम पर सब झपट ले गए।

विकास के नाम पर जिस प्रकार हमने जंगलों का दोहन किया है, इसी का दुष्परिणाम है कि आज हमें चक्रवात, बाढ़ जैसे प्राकृतिक आपदाओं का अधिक शिकार होना पड़ रहा है। 'कजरी और एक जंगल' ऐसे ही पर्यावरण के चिंता को केन्द्रित करती कहानी है, जिसमें जंगल को देवता माना गया है। एक विश्वास है कि यह जंगल लोगों की हर परिस्थिति में जान बचाता है। कजरी अपने पिता के साथ जंगल के मुहाने पर ही एक झोपड़ी में रहती है। उसे जंगल से बड़ा प्यार है। उसके पिता भी रोज जंगल से सुखी लकड़ियाँ, कुछ फल और फूल लेकर आते हैं। लकड़ियों को बाजार में बेचकर ही उनकी जीविका चलती है। लेकिन इस जंगल पर अवैध व्यापारियों की नजर पड़ गई है, वह जानवरों का शिकार करते हैं, पेड़ों को काटकर तश्करी करते हैं। कजरी इन लोगों को एक

बार देखती है और अपने बाबा से कहती है – बाबा देखो, ये लोग जंगल के पीछे ही पड़े हैं, जब देखो तब ये आते हैं और जानवरों को मार देते है और फिर उनकी खाल बेच देते है। कभी चोरी से पेट काटकर लकड़ियाँ ले जाते हैं। (भार्गव 45)

कजरी का गाँव और आस-पास के गाँव जब पूरी तरह तूफान के चपेट में आ जाता है और कई गाँव जलमग्न हो जाता है तो कजरी ऐसे तूफान और बाढ़ का कारण भी मनुष्य को ही मानती है, वह कहती है- पता है बाबा, ये जो लोग रातों रात जंगल और पेड़ काट रहे है, यह सब इसी वजह से हो रहा है। तूफान तो पेड़ों के बड़े-बड़े चेहरे से ही डरता है। उसने देखा कि लो अब तो कोई खतरा ही नहीं है, क्योंकि गाँव वालों ने तो मूर्खों की तरह सारे पेड़ काट दिए है, इसीलिए उसे अब कोई नहीं रोक सकेगा। तभी तो तूफान की गर्जना, बारिश और तेज हवाओं के साथ मिलकर फिर इतनी आक्रमक हो जाती है, हम चाह कर भी कुछ नहीं कर पाते हैं। पता नही ये गाँव वाले कब जंगल और पेड़ों की महत्ता को समझेंगे। (भार्गव 46-47)

लोग जंगल तो काट ही रहे हैं, विकास के नाम पर सरकार भी उद्योगों के विकास के लिए जंगलों को काटकर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को जमीन मुहैया करा रही है। वह बड़े- बड़े पूँजीपतियों से नये – नये समझौते कर जंगल को कम्पनियों के नाम कर रही है। सेज (SEZ) के नाम पर जंगल और पहाड़ को बर्बाद किया जा रहा है, गाँव के गाँव उजाड़े जा रहे हैं, पेड़ काटे जा रहे हैं| सिमेंट और क्रेसर मशीन लगवाकर पर्यावरण नष्ट किया जा रहा है। 'मुरारी शर्मा' अपनी कहानी 'प्रेतछाया' में ऐसे ही गाँव का चित्रण करते हैं, जहाँ विकास के नाम पर जंगल का दोहन किया जाता है। देवधाम के नाम पर पहाड़ में मंदिर की स्थापना की जाती है और देखते ही देखते मंदिर के आस-पास की भूमि पूँजीपतियों के नाम हो जाती है। विधायक भी इस काम में भरपूर मदद करते हैं- विधायक के कहने पर इस सड़क को प्रधान मंत्री ग्रामीण सड़क योजना में डाल दिया गया। जंगल में ही आरा मशीनें लगाकर देवदार के पेड़ों को काट-काट कर स्लीपर बनाए गए। सैकड़ों देवदार के स्लीपर गाड़ियों में भरकर रातों-रात गायब कर दिए गए। (शर्मा 47)

कहानी में देवीराम नाम का प्रकृति प्रेमी है। उसी ने गाँव वालों की मदद से 120 बीघे जमीन में बान, देवदार और काफल के पौधे लगवाये थे। यह जंगल उसका घर है और सारे पेड़ उसके बच्चे। किन्तु, आज जिस तरह से विकास के नाम पर मंदिर ट्रस्ट और पूँजीपति वाले पेड़ों को काट रहे हैं, उनकी आँखों से आँसू की धारा बह निकलती है। -''उसने बच्चों से भी बढ़कर इन पेड़ों की देखभाल की थी। वह यह कभी बर्दास्त नहीं कर सकता था कि पैसों के लालाच में अंधा पुजारी हरे-भरे पेड़ों को काट डाले।'' (शर्मा 48) कहानी में जंगल को बचाने की मुहिम चलायी जाती है। पूरे गाँव वाले देवी राम की मदद के लिए आ जाते हैं। विमला इन सबमें लीड रोल निभाती है। वह लोगों से खुले तौर पर चुनौती लेती है। देवी राम विमला से कहता है – ''भगवान तेरा भला करे बेटी...इस जंगल को मैंने बच्चों की तरह पाला है। अपनी आँखों के सामने इन डाल बुटों को उजड़ते कैसे देखूँ....इन पर कुल्हाड़ी चलते मैं नहीं देख सकता।'' (शर्मा 49) सरकार उस जमीन को सीमेंट फैक्टरी लगाने के लिए अनुबंध कर चुकी है। ठेकेदार को तो बस मुनाफे से मतलब है। मंदिर की आड़ में वे जंगल और पत्थर का सौदा कर रहे हैं। विमला मिटिंग में कहती है – ठेकेदार ने मंदिर की आड़ में नाले के पास क्रेशर लगा दिया है। मंगतू प्रधान की जेसीबी दिन रात जंगल में तबाही मचा रही है। सोमू कारदार के टिप्परों पर पत्थर शहर में ले जाकर बेचे जा रहे हैं। और विधायक...वो भी बंजर जमीन को सोने के भाव सीमेंट फैक्टरी को देकर करोड़ों कमाना चाहता है। (शर्मा 50)

सबको पता है कि सीमेंट कारखाना लगता है तो फिर करीब 100 बीघे क्षेत्र में फैले गाँव का उजड़ना तय है, फिर भी कुछ लोग पैसे के लालच में अपनी जमीन बेचने के लिए राजी है। कहानी में पर्यावरणविद अपने भाषण में इसके दुष्परिणाम को बताते हुए लोगों को सचेत करते हुए कहते हैं- दूसरी ओर स्पेशल इकॉनोमिक जोन बनाने की तैयारी की जा रही है... बड़ी- बड़ी कम्पनियों के साथ जल विद्युत परियोजनाएँ और सीमेंट कारखाना लगाने के लिए धराधर एमओयू साईन किये जा रहे हैं। ये सभी कारखाने और परियोजनाएँ इन पहाड़ों के लिए ग्रहण के समान है जो यहाँ की हरियाली को चटकर जाएगी...पहाड़ खोखले हो जायेंगे। (शर्मा 51)

प्राकृतिक संतुलन का आधार जंगल है, जंगलों के विनाश के कारण ही कहीं अतिवृष्टि तो कहीं अनावृष्टि देखी जा रही है। भूमंडलीय ताप में वृद्धि का कारण भी जंगलों का नाश होना है। वायु की शुद्धता जंगल पर निर्भर है। किन्तु आज वैज्ञानिक उन्नति एवं जंगल के व्यवसायीकरण ने जंगल का विनाश कर डाला है। कहानी में जंगल इस मानव सभ्यता से बार – बार प्रश्न कर रहा है- देखो, पूरा - का – पूरा परबत मेरी देह से उखाड़कर लारियों में भरकर कहाँ ले जाया जा रहा है? मेरी धरती के पेट को क्यों चीरा जा रहा है? मेरी अस्थियों के अंदर सुरंग कौन खोदे जा रहा है? वो देखो, दूर से नजदीक आते हुए मेरी काया को रौंदते बुलडोजर, मेरे मस्तिष्क को खोदती मशीनें, मेरी नशों को छेद-छेद कर किए जा रहे विस्फोट। मेरी छाती पर चलती हुई, समूचे बदन को रौंदती-खूँदती-खोदती- खुखेरती मेरा खून पीती हुई बढ़ी चली आ रही यह फौज किन हमलावरों व लुटेरों की है? (मीणा 31)

हम मानव को जंगल के इस सवाल का जवाब देना होगा। जिस जंगल से हमारा जीवन जुड़ा है आज उस जीवन को ऐशो-आराम देने के लिए हम जिस प्रकार जंगलों का विनाश कर रहे हैं, एक प्रकार से यह हमारा ही विनाश है।

सूचना क्रांति के युग में चारों तरफ विकिरण का जाल फैला हुआ है। मोबाईल के आने से जहाँ पूरी दुनिया मुट्ठी में आ गई है, वहीं हम पूरी तरह से विकिरण के चपेट में आ गए है। आज मैदान से लेकर ऊँचे पहाड़ियों के घने जंगलों तक मोबाईल टावरों की पहुँच हो चुकी है। विकिरण के कारण जहां हम कई बिमारियों की चपेट में आ रहे है, वहीं कई जीवों का जीवन भी नष्ट हो चुका है। एस. आर. हारनोट की कहानी 'भागादेवी का चाय घर' वैश्वीकरण के उपरान्त फैले कम्पनियों के मायाजाल से उत्पन्न पर्यावरणीय संकट की कहानी है। कहानी कम्पनी के आने से नदी, झरने, जंगल के विनाश के साथ – साथ मोबाईल टावर के लगने से फैलने वाले विकिरण के दुष्प्रभाव को बयां करती है। कहानी में भागादेवी कम्पनी वालों का प्रतिरोध करती है। वह इस बात पर जोर देती है कि मनुष्य की रक्षा के लिए हर पशु-पक्षी का जिन्दा रहना जरूरी है। जंगल का बचा रहना जरूरी है। लेखक कहता है- जंगल का बचे रहना जरूरी है। बुरांश का खिले रहना जरूरी है। मोरों का नाचना जरूरी है। बर्फ का गिरना जरूरी है। देवदारूओं का जिन्दा रहना जरूरी है। कितनी सारी जरूरते हैं जिन्हें भागा बचाये रखना चाहती है। ये बचाव आज के क्रूर और हत्यारे होते समय से है। (हारनोट 17)

भागा देखती है कि अब कम्पनी वालों की नजर पहाड़ों पर है। वह पूरे पहाड़ पर टावर बिछाना चाहते हैं। अपने उत्पाद का विस्तार चाहते हैं। इन टावरों के विकिरण से उसके सर पर दर्द होता है। उसे महसूस होता है जैसे कुछ अदृश्य विकिरणें उस पर आक्रमण कर रही है। कम्पनी वाले भागा के शरीर पर विज्ञापन लगवाना चाहते हैं। शरीर पर छपे हर हिस्से के विज्ञापन की अलग – अलग कीमत लगाते हैं। भागा का पति भी कम्पनी की बातों में आ जाता है। अपने शरीर को विज्ञापन के लिए बेचे जाते देख भागा बाघिन बन जाती है। लेखक लिखते हैं- भागा अपने पति की आँखों में झांकती है। वे गहरे उन्माद, जुनून और मद से भरी हुई है। पुतलियों पर उसे कम्पनी के लोग नाचते दिख रहे हैं। वे भयंकर असुरी मुखौटा पहने हुए तांडव कर रहे हैं। वे सभी को भूमंडलीय बाजारी पैरों तले रौंदते हुए उन विशाल टावरों में लगी उल्टी छतरियों में पसर रहे हैं। (हारनोट 25)

वह पति को चांटा मारती है और पूरे कम्पनी वालों का विरोध करती है। लेकिन सच तो यह है कि आज हर कोई बाजारवाद के पीछे भाग रहा है। पैसे के लालच में अपनी जमीन और घर के छतों को कम्पनी के हवाले कर देते हैं। इसकी उन्हें मोटी कीमत भी मिलती है।

निष्कर्ष :

आज अपने भोग एव सुख की प्राप्ति के लिए हम प्रकृति के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं, इसका खामियाजा हमें तो भुगतना पड़ेगा ही, हमारी भावी पीढ़ी इससे और ज्यादा नुकसान झेलेगी। प्रकृति अपना बदली जरूर लेगी। आज असमय बारिस, बाढ़, भूकम्प, सुनामी केवल प्राकृतिक घटना न होकर मनुष्य सभ्यता के लिए भारी चेतावनी है। अगर आज भी हम नहीं सुधरे तो हमें भविष्य में अपना सब कुछ खोने के लिए तैयार रहना होगा। आज के कुछ रचनाकार अपने इस दायित्व को समझ रहे हैं और अपनी कहानियों के माध्यम से पर्यावरण चिंता को अभिव्यक्ति दे रहे हैं, किन्तु सच तो यह है कि अभी भी पर्यावरणीय समस्या केवल समस्या बनी हुई है, विमर्श का रूप नहीं ले पाया है। अतः जरूरत है कि पर्यावरणीय विमर्श पर अधिक से अधिक रचनाएँ आए ताकि सामाजिक क्रांति लाई जा सके।

संदर्भ :

1. शर्मा, मुरारी. 'प्रेतछाया', पहाड़ पर धूप. अंतिका प्रकाशन, 2015.
2. भार्गव, डॉ. रश्मि. 'कजरी और एक जंगल', मधुमती. मार्च-अप्रैल-2012.
3. हारनोट. एस. आर. 'भागादेवी का चाय घर'. किलें. वाणी प्रकाशन, 2019.
4. मीणा, हरिराम. 'जंगल में आतंक'. माँदर पर थाप. सं. अजय मेहताब. अनुज्ञा. 2019.
5. हारनोट, एस. 'एक नदी तड़फती है'. पहल. अंक-122, जून-जुलाई, 2020.
7. जिलवाने, प्रदीप. 'भ्रम के बाहर'. पहल. अंक-122, जून-जुलाई, 2020.